जीने का लैन्स बदलो

साध्वी युगल निधि-कृपा

1. जीने का लेन्स बदलो

एक जिज्ञासु ने संत से पूछा, "धर्म क्रिया से संबंधित एक उलझन मेरे भीतर रहती है। हालाँकि मैं प्रतिदिन स्वाध्याय और सत्संग-भक्ति व ध्यान भी करता हूँ। मैं जप और तप में कमी नहीं रखता और प्रवचन सुनने का अवसर नहीं टालता। यूँ मैं सारी धर्मक्रिया करता हूँ किन्तु समस्या यह है, एक भी धर्म-आराधना मैं निरंतर रूप से नहीं कर पाता। कुछ दिन नियमित रूप से करता हूँ तो कुछ दिन टोटल छोड़ देता हूँ। मैं नहीं चाहता, मेरी साधना खंडित हो तथापि प्रयत्न करने पर भी निरंतरता क्यों नहीं रख पाता? मेरी भावना है और तदनुसार पुरुषार्थ भी है फिर कॅन्टिन्युटी क्यों नहीं रह पाती? आलस्य नहीं है फिर भी आराधना क्यों नहीं हो पाती?"

संत ने कहा, "मैं तुम्हें उस तथ्य और तत्व की पहचान कराऊँगा जिसके अभाव में तुम्हारी नियमितता बाधित हो जाती है। यही तुम्हारे प्रश्न का समाधान भी है।"

यकीनन ऐसी जिज्ञासा और समस्या कमोबेश हर साधक की हो सकती है। आप चाहे धर्म को जानते हो, मानते हो, समझते हो और धर्माचरण भी करते हो किन्तु मुख्य बात यह है धर्म क्रिया करते हुए आपने धर्म के मूल को नहीं जाना इसलिए टिकाव नहीं आ पाता। आपकी चिन्ता धर्मक्रिया के प्रति है परन्तु धर्म के आधार को आपने

नहीं समझा।

चिंतन करें, यदि मूल का सिंचन नहीं होगा तो पत्ते, फल, फूल कब तक ताजे रहेंगे? भगवती सूत्र में गौतम स्वामीजी ने भगवान महावीर से प्रश्न पूछा था, **'किं मूलो धम्मो?'** अर्थात् धर्म का मूल क्या है? भगवान महावीर ने फरमाया, **'दंसणमूलो धम्मो'** यानी धर्म का मूल दर्शन है। दर्शन = दृष्टि जब तक सम्यक् नहीं होगी धर्म के मूल का सिंचन नहीं होगा। इसलिए धर्म का मूल आधार सम्यक् दर्शन है।

आश्चर्य है, भगवान ने ज्ञान-ध्यान, संयम-स्वाध्याय, तप या चारित्र को धर्म की नींव न बताकर 'सम्यक् दृष्टि' को क्यों बताया? कारण स्पष्ट है, अधर्म और धर्माचरण का सारा दारोमदार दृष्टि पर आधारित है। जब तक जीने का लेन्स न बदले तब तक सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता।

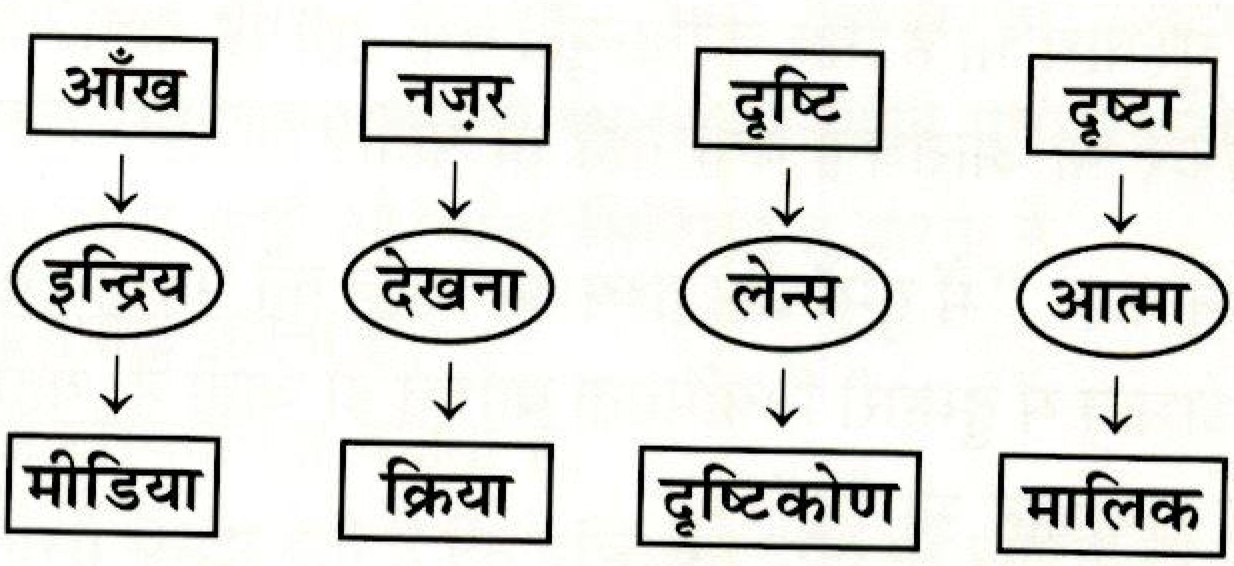

दृश्यों को देखने का निमित्त आँख है किन्तु देखनेवाला कोई और है। खिड़की से देखा जाता है पर खिड़की नहीं देखती दृष्टा यानी देखनेवाला आत्मा है। खिड़की के बाहर नज़ारा एक जैसा है किन्तु देखनेवाले की दृष्टि में अन्तर है।

स्पष्ट हो गया, देखना एक क्रिया अर्थात् Act है, देखने वाला दृष्टा यानी Viewer है और दृष्टि / Attitude है। दृश्य और दृष्टा नहीं बदलता सिर्फ़ दृष्टि को बदलना होता है इसलिए जीने का लेन्स बदलना ज़रुरी है। ध्यान दें,

- परिवेश बदलने मात्र से दृष्टि नहीं बदलती।
- धर्म क्रिया करने मात्र से भी दृष्टि नहीं पलटती।
- व्यक्ति, स्थिति व वस्तुएँ बदलने से भी दृष्टि चेन्ज नहीं होती।

चूँकि ये सब कुछ बाहर है। जो बाहर है उसका नाम है सृष्टि और सृष्टि बदलने से दृष्टि नहीं बदलती। सृष्टि को भी बदलना हो तो दृष्टि को बदलना पड़ता है। सृष्टि चाहे नहीं बदलती किन्तु दृष्टि बदलते ही वह बदली हुई फ़ील होती है। इसी कारण धर्म और दर्शन में एवं दर्शन शास्त्र व न्याय शास्त्र में इस बात को लेकर सदा विवाद होते रहे, दृष्टि या सृष्टि में पहले किसे बदला जाए।

आज भी अधिकांश समूह ऐसा है जो पहले सृष्टि को बदलने पर जोर देता है। उनका कथन है, व्यवस्था को बदल दो, मैनेजमेंट अच्छा रखो, वातावरण या स्थान बदल दो तो सब बदल जाएगा। अपने ड्राइंग रूम को अच्छी तरह साफ और सेट कर लो फिर किचॅन चाहे गंदा क्यों न हो। स्मरण रहे, ऐसा करने से परिवर्तन आते हैं किन्तु वे टेम्परारी है उनमें निरंतरता नहीं रहती।

यदि गाड़ी में बैठनेवाला सोचे, मैं अपने मुख को बदल लेता हूँ तो क्या गाड़ी पूर्व से पश्चिम की दिशा में पलट जाएगी? सर्वविदित है, जब तक स्टीयरिंग नहीं घुमायेंगे गाड़ी मुड़नेवाली नहीं है। ऐसे ही

जीवन की गाड़ी में हम कितने ही साधन बदल लें, कितनी ही बार तप, मौन, सत्संग, भक्ति, स्वाध्याय और ध्यान जैसी धर्मक्रिया कर लें किन्तु जब तक जीने का लेन्स नहीं बदलेगा तब तक जीवन गाड़ी का स्टीयरिंग घूमनेवाला नहीं है। इसलिए दृष्टि मूल्यवान है, दृष्टि को सम्यक् बनाना अनिवार्य है।

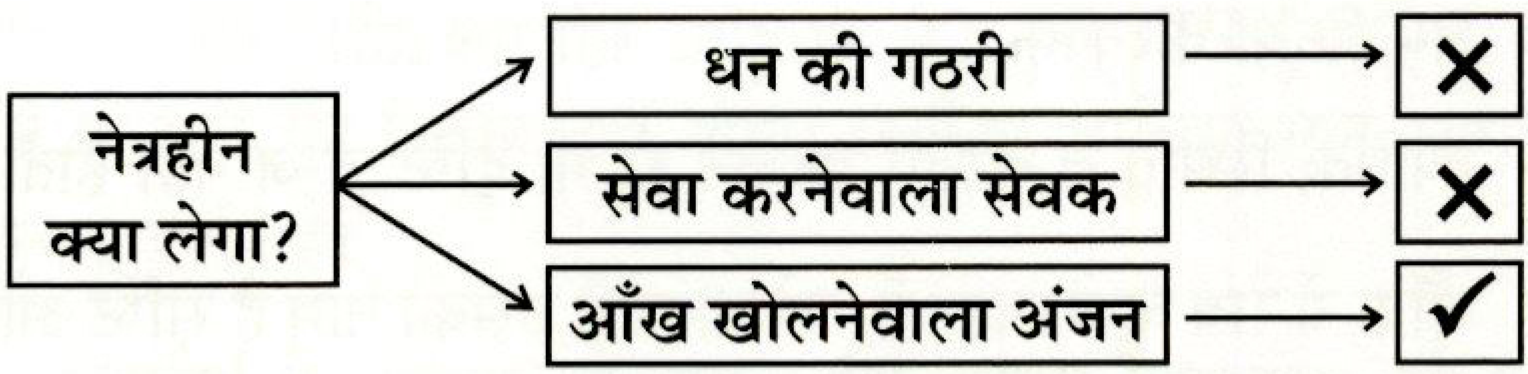

कल्पना करें, एक ऐसा व्यक्ति है जिसे आँख के अलावा सारे अंग-उपांग मिले हैं तो ऐसी स्थिति में बाहर की रोशनी भी उसके लिए अंधेरा ही है। उसके सोचने में भ्रान्ति होगी, चलने में भटकाव होगा और बोलने में दुविधा होगी। फलतः उसे क़दम क़दम पर मदद की आवश्यकता है। मान लो उसे तीन व्यक्ति ऐसे मिले जो उसके सहयोगी बनने के लिए तैयार हैं।

एक व्यक्ति ने कहा, "हे प्रज्ञाचक्षु! आपकी पीड़ा को मैं समझ रहा हूँ। इसलिए जो मेरे पास है उसे मैं सहर्ष देना चाहता हूँ। संभव है, इसके माध्यम से तुम अपनी तमाम परेशानी एवं दुविधाओं को दूर कर सको। मैं आपके संग नहीं चल सकता किन्तु मेरी ये धन की पोटली तुम रख लो।" ऐसी मनोवांछित बात सुनकर अंधा व्यक्ति बेहद प्रसन्न हुआ। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट छा गई।

दूसरे व्यक्ति ने कहा, "हे दृष्टिबाधित! मैं आपके संग रहना चाहता हूँ ताकि मेरी आँखें आपकी आंखें बन जाएं। धन की गठरी

चाहे आपके पास पड़ी रहे मैं तन की शक्ति से सेवा देना चाहता हूँ।"

तनिक सोचो! क्या अंधा व्यक्ति अपने सौभाग्य की सराहना नहीं कर रहा होगा? उसे ये ख़्याल भी ज़रूर आ गया होगा कि लोगों को तो पैसे देने पर भी सेवक नहीं मिलते और मिल भी जाए तो टिकते नहीं अतः मेरे लिए ये गोल्डन चान्स है।

तीसरा व्यक्ति वैद्य होने से जड़ी-बूटियों का जानकार था। उसके पास ऐसा अंजन था जिससे जन्मांध को भी रोशनी मिले। इसलिए उसने कहा, "हे सूरदास! इस अंजन को आँख में आँजोगे तो आप दुनिया को देख पाओगे। इन जड़ी-बूटियों से बने अंजन का प्रयोग मैं बहुतों पर कर चुका हूँ और सबको इससे रोशनी मिली है तो आप भी इसका प्रयोग करो।"

अंधे व्यक्ति ने फौरन सोचा, मुझे न किसीका धन चाहिए और न किसी से सेवा चाहिए मुझे तो केवल आँख चाहिए। यूँ भी धन कितने दिन चलेगा? सेवा के भाव भी कब तक बने रहेंगे? ये सब टेम्परारी सहयोगी है। आँख स्थायी समाधान है। ऐसा सोचकर उसने कहा, "आप मेरी आँख में फौरन ये अंजन आँज दो।" वैद्य ने उसकी आँख में अंजन लगाया तो उसे दृष्टि मिल गई। आंख खुलते ही उसने समस्त सृष्टि को निहारा और अपने आप को भी देखा। आज तक न कभी उसने स्वयं को देखा था न दूसरों को देखा था। स्वाभाविक है, उसे अपार हर्ष हुआ।

आत्म-विचार जगाओ,

बाहर की आँख खुलने से यदि इतना हर्ष हो सकता है तो जिस

दिन अन्दर की आँख खुलेगी, दृष्टि अंतर्मुखी बनेगी अर्थात् सम्यग्दर्शन होगा उस दिन कितना आनन्द मिलेगा।

कहते हैं, मनुष्य के जीवन का संचालन टू टायर सिस्टम / Two Tyre System से हो रहा है। एक जो हमें दिखता है, जो प्रकट है, above the cover है और दूसरा अप्रकट है, under cover है। माता पिता हो या शिक्षक, मैनेजमेंट गुरु हो या सलाहकार साथी हमें above the cover के संचालन की टिप्स देते हैं। लेकिन आत्मदृष्टा प्रभु महावीर ने हमें under cover को कैसे उघाड़ना है और कैसे जीने का लेन्स बदलना है इसके गुर बताये हैं।

कहना होगा, अधुना सारे मैनेजमेंट गुरु अंधे व्यक्ति के लिए पहला या दूसरा ऑप्शन बताने वाले इन्सान की भाँति है किन्तु सर्वज्ञों की वाणी रूपी वैद्य हमें वह अंजन देते हैं जिससे भीतर की दृष्टि खुले और आत्म-दर्शन हो।

सावधान! आँख मिलने के बाद क्या पहला व्यक्ति धन की गठरी देने को तैयार होगा? क्या दूसरा व्यक्ति सेवक बनकर संग में रहना चाहेगा? आँख नहीं थी तभी तक धन और सेवा की ऑफर थी और ज़रूरत थी किन्तु आज सभी आँख वाले धन और सेवक यानी सुविधा और सेवा में अटक गये हैं।

सेल्फ को चेक कर लो, यदि अंधे की जगह हम होते तो धन, सेवक और अंजन तीनों का एक साथ चुनाव करने हेतु तत्पर हो जाते और एक भी चीज हासिल नहीं होती।

ख़ास बात यह है, आँख का दायरा चाहे सीमित है किन्तु दृष्टि

का दायरा विस्तृत है। दृष्टि का कनेक्शन सिर्फ़ आँख से नहीं बल्कि पाँच इन्द्रियाँ और मन से भी रिलेटेड है। हमारी वृत्ति, संस्कार, रुचि और भाव सब कुछ दृष्टि पर आधारित है। इसलिए मात्र बाहर की आँख में सही लेन्स बिठाना काफी नहीं जीने का भी लेन्स बदलना ज़रूरी है।

ज्ञानियों ने दृष्टि को तीर के नोंक की भाँति बताया है। जिसका रुख बदलते ही रुचि, संस्कार, वृत्ति और लक्ष्य सब कुछ बदल जाता है। इसी कारण ज़िन्दगी में एक पल के अन्दर परिवर्तन संभव है। दृष्टि परिवर्तन के आधार पर ही चोर, लुटेरे एवं क्रूर-हिंसक व्यक्तियों का आमूलचूल परिवर्तन हुआ। जीने का लेन्स बदलते ही सारे लक्षण बदल जाते हैं। इसी कारण निर्दयी मानव का भी कल्याण हुआ।

वस्तुतः आज नामकरण संस्कार या विवाह संस्कार की भाँति 'दृष्टि परिवर्तन' संस्कार की भी ज़रुरत है। अपने को एक बार चेक कर लो, प्रतिदिन की धर्म प्रवृत्तियाँ करते हुए यदि दृष्टि का सम्यक् परिवर्तन नहीं हो रहा है तो जानना हमने अंजन को आंजा नहीं बल्कि धन और सेवा के ऑप्शन को अपना गुड लक मानकर खुशी से जी रहे हैं।

ग़ौर से देखा जाए तो महसूस होगा, प्रथम दो उपाय का एक साथ स्वीकार करनेवाला अंधा व्यक्ति तो अंधा ही रहेगा। हाँ, उसकी सृष्टि = वातावरण, स्टैण्डर्ड या जीने की स्टाइल में फर्क आ सकता है किन्तु स्वयं में नहीं। स्वयं में चेन्ज लाने के लिए आँख में रोशनी ज़रूरी है।

इसलिए हर धर्मक्रिया के पीछे दृष्टि को सही बनाने का लक्ष्य रखो। चूँकि दृष्टि बदलने के बाद स्टैण्डर्ड स्वत: बदल जाएगा किन्तु स्टैण्डर्ड बदलने पर भी दृष्टि नहीं बदली तो उत्थान कैसे होगा? इस कारण क्रिया के साथ चर्या का भी स्टैण्डर्ड बदलना हो तो जीने का लेन्स बदलना होगा।

दृष्टि को पाना नहीं प्रकटाना है

दृष्टि मिलती नहीं प्रकटानी होती है। जो मिले वह बाहर का है और जो प्रकट हो वह भीतर का है। जो मिलता है वह विनाशी है, जो प्रकट होता है वह अविनाशी है। सम्यग्दर्शन भीतर है, वह आत्मा का गुण है उसको पहचानना है अर्थात् उसे प्रकटाना है, उजागर करना है। उसे प्रकट करने की प्रक्रिया का नाम स्वाध्याय और ध्यान है जिससे चेतना अंतर्मुखी होती है।

जैसे कुएं का पानी बाहर निकालने के लिए बाल्टी और रस्सी चाहिए ऐसे ही स्वाध्याय एवं ध्यान की निरंतरता से सम्यग्दर्शन को प्रकटाना है। स्वाध्याय की धारा निरंतर बन जाए तो ध्यान घटित होता है और ध्यान की निरंतरता हो तो सम्यग्दर्शन की अनुभूति होती है परन्तु प्रारंभिक बिन्दु 'दृष्टि' है।

दृष्टि का रस्सा खिंचनेवाली दो टीम हैं, एक है सम्यक् एवं दूसरी का नाम मिथ्या है। जब दृष्टि के रस्से को मिथ्या की टीम खिंचती है तो जीवन शरीरलक्षी बन जाता है और सब कुछ बाहर में खोजता है तो अपनी पहचान नहीं हो पाती। जब सम्यक् की टीम रस्सा अपनी ओर खिंचती है तो सत्य का बोध होता है, ओनरशीप के लेवल बदल जाते हैं। 'मैं' और 'मेरा' क्या है इसका

बोध हो जाता है। जिस दिन मिथ्या दृष्टि टीम की पकड़ सदा के लिए छूट जाती है तब सम्यक् दृष्टि की टीम सिद्धालय तक का साथ निभाती है।

दृष्टि का विज्ञान समझने के लिए हमें तीन शब्दों को जानना होगा तभी हम सम्यग्दर्शन के अधिकारी बन पायेंगे। दृष्टि, दृष्टा और दृश्य में परस्पर क्या संबंध है उसे जानना आवश्यक है।

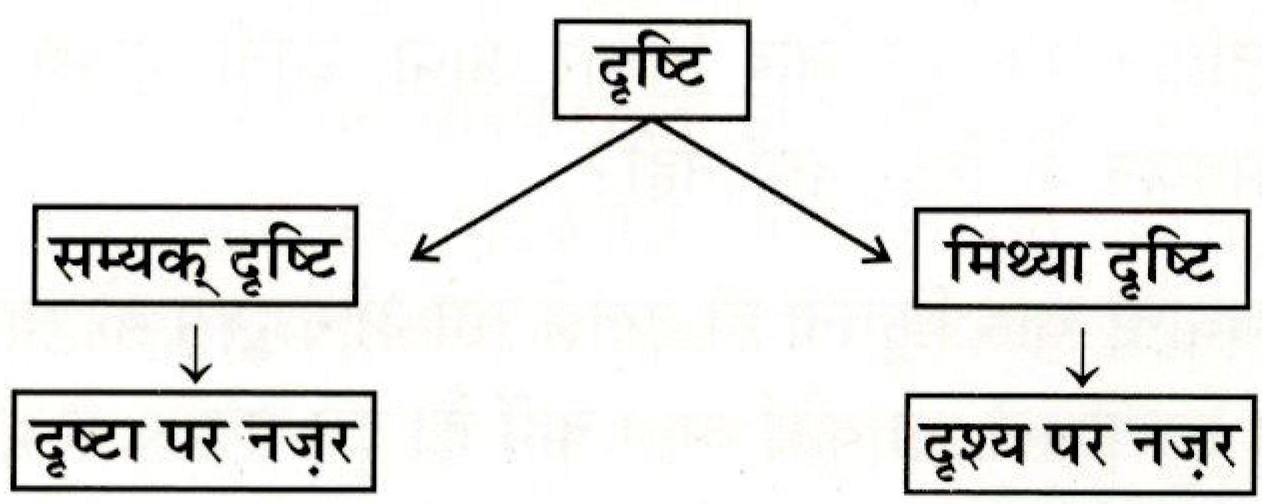

दृष्टि का कनेक्शन दोनों तरफ हो सकता है। चाहो तो दृष्टामुखी बनो और चाहो तो दृश्यमुखी बनो। माना कि हम कर्मों से बंधे हैं, परतंत्र है, निमित्त के अधीन है किन्तु दृष्टि के मामले में हम स्वतंत्र हैं। एक बात निश्चित है, दृष्टि जब 'स्व' पर लौटती है तो सम्यक् बनती है और 'पर' में उलझती है तो मिथ्या बनती है। इसी आधार पर समझ लेना 'पर' पदार्थ में अपनापन करना मिथ्यादर्शन है और 'स्व' निजात्मा में अपनापन करना सम्यग्दर्शन है।

एक उदाहरण के माध्यम से अपने को चेक करें। मान लो, हम बगीचे में गये वहाँ खिले हुए पुष्प और सुगंध का एक नज़ारा देखा। उस दृश्य को देखते ही हमारी नज़र फूल, सुगंध, बगीचा और माली को देखने लग जाती है।